हिंदी की उपन्यास परम्परा और प्रेमचन्द

डॉ. राखी उपाध्याय,

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून

सारांश

प्रेमचन्द ने हिंदी की उपन्यास परम्परा को भावी विकास के लिये विविध धाराओं से युक्त एक ऐसी दिशा दी हैं जिसमें उसके विविध अंगों को समुचित रूप से पल्लवित और पुष्पित होने का अवसर मिला है। प्रेमचन्द ने सामाजिक यथार्थ की भूमि पर खडे होकर उपन्यास को नया रूप रंग दिया है। प्रेमचन्द अपूर्व प्रतिभा के धनी हैं। वे जीवन ओर समाज की धरती का सम्पूर्ण रस लेकर एक वट वृक्ष की भाँति इतनी व्यापकता और विशालता में फैले कि उनकी छत्र छाया में उपन्यास परम्परा जीवन्त रही। एक सच्चे युग–प्रवर्तक साहित्यकार के नाते उन्होंने युगों से वियुक्त साहित्य का पुनः युग–जीवन से संयोग कराया। प्रेमचन्द ने हिंदी उपन्यास साहित्य को काल्पनिक उड़ान से यथार्थ धरातल पर लाने, सत्यासत्य निरुपण करने, समाज को विषमताओं, समस्याओं तथा उलझनों के प्रति सचेत कर आदर्श पथ पर चलने के लिये प्रेरणा दी।

मुख्य शब्द – *हिंदी उपन्यास, उपन्यासकार, उपन्यास परम्परा, प्रेमचन्द, यथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद*

उपन्यास गद्य साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है। उपन्यास कथा साहित्य का वह रूप है, जिसमें जीवन का बहु आयामी चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। इस विशद चित्रण में मानव–जीवन की विभिन्न परिस्थितियों, समस्याओं, भावनाओं, अनुभूतियों तथा संवेदनाओं आदि का स्वाभाविक प्रतिबिम्ब मिलता है। इन विशेषताओं से सम्पन्न होने के कारण उपन्यास को 'मानव जीवन का महाकाव्य' की भी संज्ञा दी जाती है। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने उपन्यास को मानव जीवन का विशद चित्र प्रस्तुत करने वाली विधा बताते हुये लिखा है– "उपन्यास गद्य साहित्य का वह अंग है जो मानव के चरित्रों का चित्र उपस्थित करते हुए उसके जीवन पर प्रकाश डालता है और रहस्यों का उद्घाटन करता है।"[1] उपन्यास की रोचकता तथा उसकी गद्य विद्या के विषय को रेखांकित करते हुए आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का कथन इस प्रकार है– "उपन्यास के आजकल गद्यात्मक कृति का अर्थ लिखा जाता है पद्य बद्ध उपन्यास नहीं हुआ करते।"[2]

हिंदी का उपन्यास–साहित्य जिस रूप में आज हे, वह पश्चिमी साहित्य की देन है। यद्यपि कुछ विद्वान हिंदी उपन्यास की परम्परा का प्रारम्भ सूफी कवियों के प्रेमाख्यानों से मानते हैं, किन्तु इन ग्रन्थों में औपन्यासिक तत्त्वों का विकास नहीं हो पाया है।

हिंदी में गद्य–लेखन का कार्य उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में ही प्रारम्भ हो गया था, परन्तु हिंदी उपन्यास का लेखन तब प्रारम्भ हुआ जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिंदी साहित्याकाश में अवतरित हुए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की दृष्टि साहित्य के अन्य रूपों के साथ–साथ उपन्यास पर भी गई। फलस्वरूप उनके प्रोत्साहन से अनेक बंगला उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद हुआ और अनेक मौलिक उपन्यास लिखे गये। स्वयं भारतेन्दु ने एक भी मौलिक उपन्यास की रचना नहीं की।

फिर भी, उन्होंने हिंदी उपन्यास के लिए आधार भूमि अवश्य प्रस्तुत की है।

भारतेन्दु की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उन्होंने साहित्य के माध्यम से युग–जीवन को अभिव्यक्त करने का भरपूर प्रयास किया तथा अन्य भाषा के उपन्यासों के अनुवाद को प्रोत्साहन देकर अनेक लेखकों को इस ओर आकर्षित किया। इससे हिंदी में भी उपन्यासों की रचना आरम्भ हो गई। इन सभी रचनाओं का प्रधान लक्ष्य, युग–जीवन को आधार बनाकर सामाजिक समस्याओं को चित्रित करना था जिससे समाज में प्रचलित दोषों को दूर किया जा सके। किन्तु सामाजिक उपन्यासों की इस धारा का विकास न हो सका। इसके विपरीत देवकी नन्दन खत्री, गोपालराय, गहमरी एवं किशोरी लाल गोस्वामी जैसे लेखकों ने अपने उपन्यासों में मनोरंजन की प्रमुखता देकर घटना–प्रधान उपन्यासों से समस्त उपन्यास साहित्य को आन्दोलित किया। इसका दूरगामी परिणाम यह हुआ कि प्रेमचन्द के आविर्भाव तक सामाजिक अवस्था का चित्रण करने वाले चरित्र–प्रधान उपन्यासों का प्रायः अभाव ही बना रहा।

हिंदी उपन्यास–साहित्य के सृजन की प्रेरणा अंग्रेजी साहित्य से सीधे न आकर बंगाल साहित्य के माध्यम से आई, क्योंकि अंग्रेजी के द्वारा विदेशी साहित्य, संस्कृति–सभ्यता, विदेशी रीति–नीति प्रतिभा का परिचय बंगाल को ही घनिष्ठ रूप से ही सर्वप्रथम हुआ। इसका प्रत्यक्ष–प्रमाण यह है कि हिंदी के प्रारम्भिक उपन्यास बंगला के अनूदित उपन्यास हैं। ऐसे उपन्यास हैं– कार्तिक प्रसाद खत्री का 'इला', 'प्रमिला', 'कुलटा'; गोपालराम गहमरी का 'चतुर चंचला'; अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'कृष्णकान्त का दान पात्र' आदि। भारतेन्दु युगीन हिंदी उपन्यासों का विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है– नाटकों और निबन्धों की ओर विशेष सुझाव रहने पर भी बंग भाषा की देखा–देखी नये ढंग से उपन्यासों की ओर ध्यान जा चुका था। इस समय तक बंगला भाषा में बहुत से अच्छे उपन्यास निकल चुके थे। अतः साहित्य के इस विभाग की शून्यता शीघ्र हटाने के लिये उनके अनुवाद आवश्यक प्रतीत हुये।"[3] इससे स्पष्ट है कि हिंदी लेखकों का नये ढंग के उपन्यासों की रचना की ओर बंग भाषा की देखा–देखी ध्यान आकृष्ट हुआ। इस प्रकार हिंदी में उपन्यास रचना की प्रेरणा प्रत्यक्षतः बंगला और और अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी से प्राप्त हुई। इस दृष्टि से लाला श्री निवासदास के 'परीक्षा गुरु' को अंग्रेजी–ढंग का प्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है।[4] शिवनारायण श्रीवास्तव की इसे प्रथम औपन्यासिक कृति की संज्ञा देते हुए उपन्यास वाङ्मय के पक्ष–निर्देश का श्रेय देते हैं।[5] डॉ. कैलाश ने भारतेन्दु की उपन्यास की संभावनाओं और क्षमता को स्पष्ट करते हुए भी 'परीक्षा गुरु' को ही प्रथम मौलिकता पूर्ण उपन्यास माना। ब्रजरत्न ने भी 'परीक्षा गुरु' के शिल्प पर अंग्रेजी के प्रत्यक्ष प्रभाव को स्वीकार कर पश्चिम के ढंग पर लिखा प्रथम मौलिक उपन्यास कहा है।[6] इतना ही नहीं, डॉ. गोपालदराय ने, जिन्होंने 'निःसहाय हिंदू' को प्रथम उपन्यास माना, 'परीक्षा गुरु' की शिल्पगत नवीनता को स्वीकार किया।[7]

भारतेन्दु काल में उपन्यासों की जिस रचना परम्परा का सूत्र पात हुआ, वही परम्परा आगे चलकर अधिक विकसित और पुष्ट हुई। उपन्यास साहित्य की यह परम्परा भारतेन्दु–युगीन सम्पूर्ण विशेषताएं लिये हुये हैं। इस परम्परा में, सामाजिक जीवन की यथार्थ समस्याओं को लेकर गम्भीर उपन्यासों की रचना करने की अपेक्षा, लेखकों और पाठकों की प्रवृत्ति, कुतूहल, रहस्य और रोमांच के माध्यम से मनोरंजन करने में अधिक रहे हैं। इन रचनाओं के लेखकों का मुख्य लक्ष्य रहा कि वे अपने पाठकों को रहस्यमयी अद्भुत घटनाओं को शृंखलाबद्ध अपरिचित संसार में भटकाते रहें। शिवनारायण श्रीवास्तव ने प्रेमचन्द पूर्व लिखे गये मौलिक उपन्यासों की इस परम्परा

को पांच श्रेणियों में विभाजित किया है– सामाजिक, ऐयारी, तिलस्मी, जासूसी, ऐतिहासिक तथा भाव प्रधान।[8] इस वर्गीकरण में ऐयारी, तिलस्मी और जासूसी उपन्यास घटनात्मक वर्ग के हैं तथा भावप्रधान उपन्यासों के नये वर्ग का संकेत मिलता है। वस्तुतः यह वर्गीकरण आचार्य शुक्ल के 'हिंदी साहित्य के इतिहास' पर आधारित है। शुक्ल जी ने 'भाव या मनोविकारों की प्रगल्भ और वेगवती व्यंजना वाले भाव–प्रधान उपन्यासों की एक पृथक् कोटि निर्धारित की है।[9] श्रीकृष्णलाल ने रचना–शैली के आधार पर वर्गीकरण करते हुये तद्युगीन समस्त उपन्यासों को चरित्र–प्रधान एवं कथा–प्रधान इन दो वर्गों में रखा है।[10] श्रीकृष्णलाल ने जिन उपन्यासों को चरित्र–प्रधान माना है, वास्तव में वे भी कथा–प्रधान सामाजिक उपन्यास ही हैं। वैसे तो तिलस्मी, ऐयारी और जासूसी उपन्यासों के पात्रों में भी कोई न कोई चरित्रिक विशेषता मिल ही जाती है। डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने इस युग के उपन्यासों पर विचार करते हुए उन्हें चार प्रमुख वर्गों में विभाजित किया है– सामाजिक, ऐतिहासिक, ऐयारी, तिलस्मी और जासूसी। पुनः उन्होंने सामाजिक उपन्यासों के चार उपभेद हैं– उद्देश्य–प्रधान, रस–प्रधान, वस्तु–प्रधान और चरित्र–प्रधान।[11] उद्देश्य प्रधान उपन्यासों से डॉ. माता प्रसाद गुप्त का अभिप्राय शिक्षा–प्रद उपन्यासों से है। इस युग के अधिकांश सामाजिक उपन्यास इस कोटि में आते हैं। रस–प्रधान उपन्यासों का अभिप्राय श्रृंगारिक उपन्यासों से और वस्तु–प्रधान उपन्यासों का घटना–प्रधान उपन्यासों से है। डॉ. कैलाश प्रकाश ने तत्कालीन उपन्यासों को तीन वर्गों में रखा– सामाजिक, ऐतिहासिक और घटनात्मक।[12]

वास्तव में प्रेमचन्द–पूर्व युग की साहित्य चेतना के मूल में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं– एक मनोरंजन की ओर दूसरी सामाजिक जागरण की। ऐयारी, तिलस्मी और जासूसी उपन्यास मनोरंजन की प्रवृत्ति से परिचालित थे तथा उपदेश प्रधान और सुधारवादी उपन्यास सामाजिक जागरण की प्रेरणा से परिचालित थे। मनोरंजन का तत्त्व प्रत्येक युग के कथा–साहित्य का प्रेरक होता है। सामाजिक जागरूकता से प्रेरित उपन्यास भी मनोरंजन के तत्त्व से सर्वथा रहित नहीं हो सकता। अतः प्रेमचन्द–पूर्व युग के उपन्यास–साहित्य को सामाजिक, ऐयारी, जासूसी, ऐतिहासिक और भाव–विधान आदि वर्गों में रखकर उसका मूल्यांकन किया जा सकता है।

प्रेमचन्द–पूर्व हिंदी उपन्यासों की परम्परा के मूल्यांकन से यह सिद्ध हो जाता है कि उनसे पूर्व हिन्दी–उपन्यास सर्वथा अविकसित अवस्था में था और उसमें तिलस्मी, ऐयारी तथा जासूसी कथाओं की भरमार थी।

निःसंदेह प्रेमचन्द ने अपने से पूर्व रचित हिंदी उपन्यास परम्परा की सीमाओं को समझ लिया था। उनकी दृष्टि से पूर्व रचित उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन एवं पाठकों के अद्भुत रस–प्रेम की तृप्ति था। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने हिंदी उपन्यास को मनोरंजन के स्तर से उठाकर जीवन के साथ सार्थक रूप में जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया तथा तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के यथार्थ चित्रण को प्रमुखता दी। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द भारतीय समाज को आदर्श पथ पर बढ़ते हुए देखना चाहते थे जिसके कारण उनके उपन्यासों में यथार्थ चित्रण के साथ आदर्शोंमुख यथार्थ चित्र अपने अनूठे रंग के साथ सामने आया है। मौलिक तथा विशिष्ट उपन्यास रचना के कारण उन्हें 'उपन्यास सम्राट' की संज्ञा दी जाती है।

सन् 1918 ई. में प्रेमचन्द के उपन्यास 'सेवासदन' का प्रकाशन हिंदी उपन्यास जगत के लिये महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें नागरिक जीवन तथा हिंदी समाज के मध्यम वर्ग की सामाजिक समस्याओं का आकर्षक चित्रण किया गया है।

इसी के साथ प्रेमचन्द ने अपने से पूर्व चली आ रही घटना–प्रधान उपन्यासों की परम्परा को मोड़कर चरित्र प्रधान उपन्यासों की परम्परा का सूत्रपात किया और उनमें तिलस्मी, जासूसी एवं शृंगारी कथानक के स्थान पर समाज की नित्य–प्रति की समस्याओं को स्थान दिया। इस प्रकार कल्पना यथार्थ के चित्रण का माध्यम बनी, किसी स्वप्न–लोक के निर्माण की प्रेरिका नहीं। प्रेमचन्द की सशक्त लेखनी से हिंदी उपन्यास में पहली बार किसान को नायक का पद मिला जो कठिनाइयों से झूलता है, समस्याओं में उलझता है, बाधाओं को पार करने का प्रयत्न करता है फिर भी सूदखोरों के द्वारा फसल उठाते देखकर मन मसोस कर रह जाता है। ऐसी चित्रण में सच्चाई झांकती है। इसे पढ़कर दर्द का अनुभव होता है।

'सेवासदन' के प्रकाशन से 'गोदान' के प्रकाशन तक लगभग बीस वर्षों तक प्रेमचन्द का हिंदी उपन्यास–साहित्य पर एक छत्र राज्य रहा। दो दशकों का यह समय सामाजिक उद्‌बोधन का, राष्ट्रीय जागरण का, लौकिक एवं अध्यात्मिक आदर्शों के परीक्षण का, नवीन मानवतावादी विचारधारा के प्रचार का, वर्ग चेतना के उदय तथा मानव–मन के विश्लेषण का युग रहा है। इसी के साथ हिंदी उपन्यास ने कल्पना, रोमांस तथा चमत्कार प्रदर्शन के इन्द्रजाल से मुक्ति पाई और सामाजिक यथार्थ की कठोर भूमि पर कदम रखा। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के विचार से – "अब तक के उपन्यासों में केवल अलौकिक घटनाएँ प्रधान रहती थी। अब मानव मन और मानव जीवन का स्वभाविक चित्रण होने लगा। इस नवीन पद्धति के उपन्यासों को श्रीगणेश प्रेमचन्द के उपन्यासों से होता है।"[13] इसका प्रमुख कारण यही है कि प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों की कथाओं के उपकरण जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों से जुटाये हैं।

प्रेमचन्द ने उपन्यासों में घटना वैचित्र्य की अपेक्षा यथार्थ चित्रण की स्वाभाविता पर अधिक ध्यान दिया है। मानव–मन पर विभिन्न परिस्थितियों की क्या प्रतिक्रिया होती हैं और अपने स्वभाव–संस्कार के अनुसार व्यवहार करता हुआ, मानव, किस प्रकार नवनी मानसिक और बाह्य परिस्थितियों का निर्माण करता है, इसका अंकन भी प्रेमचन्द के द्वारा ही प्रारम्भ हुआ, जो निरन्तर कलात्मक पूर्णता की ओर बढ़ता है। अपने कलात्मक विवेचन और मौलिक–साहित्यिक प्रेरणा से युगीन सामाजिक जीवन का पूर्ण सत्य रूप में यथार्थ चित्रण करने हुए प्रेमचन्द ने आदर्श मार्ग की ओर संकेत किया है। प्रेमचन्द जितने ही सीधे तथा सरल स्वभाव के थे, उनकी अनुभूति उतनी ही सूक्ष्म थीं, वे महान तपस्वी साहित्यकार थे। उन्होंने जीवन की वेदनाओं के प्रत्येक पल तथा दुःख की प्रत्येक अनुभूति को सरल तथा सहज रूप में व्यक्त कर दिया है। यह अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य की परम धरोहर बन गई है। सामाजिक यथार्थ का इतना सूक्ष्म, सहज, स्वस्थ एवं सजीव वर्णन प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती लेखकों में तो है ही नहीं, परवर्ती लेखकों में भी कम ही मिलता है। प्रेमचन्द ने जीवन को, उसकी सम्पूर्ण वास्तविकता में ग्रहण करते हुये उसके संभावित स्वस्थ एवं मंगलमय स्वरूप की ओर अग्रसर करने का महत् प्रयास किया है तथा अपनी इस प्रवृत्ति को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के नाम से अभिहित किया है।[14] भावना में आदर्शवादी होते हुये भी प्रेमचन्द ने चित्रण भूमि पर आकर यथार्थ जीवनानुभूतियों से प्रेरणा ग्रहण की है। अपने युग की बहुविध समस्याओं एवं संस्कारजन्य आदर्शवादिता के कठोर अंकुश के द्वन्द्व के फल स्वरूप उनके उपन्यासों के अन्त में आदर्शवाद की यथार्थवाद पर विजय हुई है। वस्तुतः साहित्य और जीवन के प्रति प्रेमचन्द के इस दृष्टिकोण ने ही अधिकांश साहित्यकारों का पथ–प्रदर्शन किया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्रेमचन्द ने जीवन के यथार्थ में ही पवित्र और कोमल

भावनाओं का अन्वेषण किया है तथा सत्य, सेवा, त्याग, साधना आदि की भावनाओं को अपने उपन्यासों के माध्यम से जागृत किया है। वास्तव में उन्होंने मानव जीवन में देवत्व ढूंढ़ा है और यही उनका आदर्शोन्मुख यथार्थवाद है।

कथा साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डॉ. शशिभूषण सिंहल के अनुसार– "प्रेमचन्द ने समाज के त्रस्त वर्ग के प्रति पाठकों की करुणा जागृत की है और त्रासक पर व्यंग्य किया है। वे इतना करके संतुष्ट नहीं हो गये हैं। उन्होंने उपन्यासों में समाज की गिरी हुई दशा को सुधारने वाले तत्वों को भी सक्रिय रूप में प्रदर्शित किया है।"[15]

भाषा और शिल्प की दृष्टि से भी प्रेमचन्द ने हिंदी उपन्यास को विशिष्ट स्तर प्रदान किया है। वैसे उनके पूर्ववर्ती उपन्यासकार बाबू देवकी नन्दन खत्री ने सुगठित और ठोस धरातल वाले कथानक गढ़ने का कौशल प्रदर्शित किया है, परन्तु वर्णनीय विषय के अनुरूप शिल्प के अन्वेषण का प्रयोग प्रेमचन्द ने ही किया है, जिसमें सजीवता, गतिशीलता और नाटकीयता है।

भाषा को वैशिष्ट्य प्रदान करते हुए उन्होंने अलंकारिता और कल्पना की रंगीनी के स्थान पर सत्य के नये प्रकाश को ग्रहण करने वाली 'सरल' भाषा के साहित्यिक रूप का प्रयोग किया है। भाषा के सटीक, सार्थक और व्यंजनापूर्ण प्रयोग में प्रेमचन्द समकालीन और परवर्ती उपन्यासकारों से बहुत आगे निकल गये हैं।

यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को प्रमुखता दी है। यही भारतेन्दु युग से चली आ रही हिन्दी की अपनी स्वस्थ परम्परा भी थी। इस परम्परा को दृढ़ता प्रदान करने में प्रेमचन्द की विशिष्ट भूमिका रही है। इसका कारण– तत्कालीन भारतीय जीवन की असाधारण गतिशीलता और प्रेमचन्द का इस जीवन से घनिष्ठ परिचय एवं उनकी अद्‌भुत प्रतिभा और सृजन–शक्ति रही है।

Copyright © 2015, Dr. Rakhee Upadhyay. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.

1 प्रेमचन्द– कुछ विचार, पृ.– 41
2 वाजपेयी, आचार्य नन्ददुलारे – आधुनिक साहित्य, पृ.– 123
3 शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.– 455
4 शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.– 310
5 श्रीवास्तव, शिवनारायण – हिंदी उपन्यास, पृ.– 63
6 दास, डॉ. बृजरत्न – हिंदी उपन्यास साहितय, पृ.– 132
7 राय, डॉ. गोपाल – हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रूचि का प्रभाव, पृ.– 223
8 श्रीवास्तव, शिवनारायण – हिंदी साहित्य, पृ.– 23
9 शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.– 501
10 लाल, श्रीकृष्ण – आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास, पृ.– 292
11 गुप्त, डॉ. माता प्रसाद – हिंदी उपन्यास साहित्य, पृ.– 26
12 प्रकाश, डॉ. कैलाश – प्रेमचन्द–पूर्व हिंदी साहित्य, पृ.– 77
13 वार्ष्णेय, डॉ. लक्ष्मीसागर – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.– 235
14 श्रीवास्तव, शिवनारायण – हिंदी उपन्यास, पृ.– 68
15 सिंहल, डॉ. शशिभूषण – हिंदी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, पृ.– 49